Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2025 E-Journal, Volume I, Issue XLIX, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

मेवाड़ की लोक-संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान: संरक्षण की आवश्यकता और चुनौतियाँ

डिम्पल चावला* डॉ. हेमेन्द्र सिंह सारंगदेवोत**

* शोधार्थी (इतिहास) मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चित्तौड़गढ़ (राज.) भारत
** सह आचार्य (इतिहास) मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चित्तौड़गढ़ (राज.) भारत

शोध सारांश – मेवाड़ की लोक संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान की झलक यहाँ के स्थापत्य, साहित्य, लोक गीत, लोक नृत्य, और यहाँ की ऐतिहासिक धरोहर में झलकती है। यहाँ की सांस्कृतिक विरासत मेवाड़ की कलात्मक सृजनता के साथ-साथ सामाजिक एकता और मूल्यों का भी प्रतिनिधित्व करती है। पीढ़ी दर पीढ़ी जनसामान्य के जीवन में रच बसकर यह परंपरा निरंतर आगे बढ़ती रही है। परंतु वर्तमान में वैश्वीकरण, तीव्र शहरीकरण और नई पीढ़ी में परंपराओं के प्रति घटते लगाव के कारण इसके संरक्षण में चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। वर्तमान में इसके संरक्षण के लिए ठोस कदम नहीं उठाए गए तो यह अमूल्य धरोहर विलुप्त होने के ख़तरे में है।

शब्द कुंजी – मेवाड़, लोक-संस्कृति, सांस्कृतिक पहचान, संरक्षण, परंपरा, लोकगीत, लोकनृत्य, गवरी, स्थापत्य कला, चित्रकला, लोककथाएँ, सांस्कृतिक विरासत, पर्यटन, शहरीकरण, वैश्वीकरण।

प्रस्तावना – मेवाड़ भारत में अपनी ऐतिहासिक निरंतरता, संस्कृति और अपनी विविधता के लिए विशेष स्थान रखता है। भारत की सांस्कृतिक विरासत में मेवाड़ का अतुलनीय योगदान रहा है। मेवाड़ केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं हैं जिसका अपना राजनीतिक इतिहास है बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक चेतना है। मेवाड़ की लोक संस्कृति, प्रदेश के जनसमूह का सामाजिक और कलात्मक विकास है। मेवाड़ राजस्थान के दक्षिणी पश्चिमी भाग में अवस्थित है जो अपनी परंपराओं और लोक स्मृतियों का जीवंत संगम है। मेवाड़ ने युद्धभूमि में पराक्रम भी दिखाया है और साथ ही साथ लोकगीत, नृत्य, उत्सव, परम्परा व संस्कृति के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक समृद्धि का भी संरक्षण किया है। यहां के लोक जीवन में पहाड़ों की कठोरता और लोकमानस की कोमलता साथ-साथ चलती है।

मेवाड़ का ऐतिहासिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य – मेवाड़ की सांस्कृतिक पहचान के मूल में ऐतिहासिक कारक विद्यमान है क्योंकि यहां की सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठभूमि इसी ने तैयार की है। मेवाड़ में अनेक शासक रहे है जिन्होंने विदेशी आक्रांताओं से अपनी स्वाधीनता की रक्षा की है, साथ ही साथ मेवाड़ की परम्परा का संरक्षण और पोषण भी किया है। मेवाड़ की इस पावन भूमि के रजकणों में कुछ ऐसे स्वाभाविक आधार भूत तथ्य विद्यमान है जिसके कारण यह भूमि दीर्घकाल तक अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल रही। मेवाड़ की कला, धर्म और लोक परम्परा को प्रोत्साहन दिया। मेवाड़ी चित्रकला का पहला उदाहरण महाराणा तेजसिंह के समय का चित्रित ग्रंथ 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णि' था। महाराणा कुंभा को जिन्हें राजस्थानी स्थापत्य का जनक कहा जाता है, उनके काल में 'कुम्भलगढ़ किला' और 'विजय स्तम्भ' जैसी इमारतें बनी। वे स्वयं एक महान संगीतकार और विद्वान भी थे। महाराणा प्रताप ने कठिन परिस्थितियों में भी 'मेवाड़ लघुचित्र शैली' के कलाकारों को संरक्षण दिया, जिससे आगे चलकर नाथद्वारा की 'पिचवाई चित्रकला' विकसित हुई।

लोक परम्परा एवं सामाजिक संरचना – मेवाड़ की संस्कृति की पहचान यहां की परम्परा और सामाजिक संरचना में भी निहित है। यहां के सामाजिक जीवन में परंपराएं सामुदायिक एकता, नैतिक मूल्यों और सामूहिक पहचान का अभिन्न हिस्सा बनी हुई हैं। मेवाड़ की लोक परंपराओं में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। प्रत्येक रस्म, रिवाज, परम्परा, सामाजिक आयोजन आदि में महिलाओं की भूमिका अग्रणी रही है। रानी पद्मिनी अपनी अद्वितीय सौंदर्य और साहस के साथ-साथ राजपूत शौर्य और मर्यादा की प्रतीक बनीं। चित्तौड़ के जौहर प्रसंग ने लोकगीतों, चित्रकला और नाट्य में प्रेरणा का स्रोत प्रदान किया। संत कवयित्री मीरा बाई ने भक्ति आंदोलन को अपनी सुगम और मधुर रचनाओं से जीवंत कर दिया। उनके भजनों ने मेवाड़ की संगीत और लोकगायन परंपरा को नया आयाम दिया और आज भी नाथद्वारा, चित्तौड़ व उदयपुर की भक्ति-चित्रकला में मीरा के प्रसंग अंकित मिलते हैं। महलों और मंदिरों की भित्ति चित्रों में रानियों के धार्मिक अनुष्ठान, लोकत्योहार और नृत्य-गीतों के दृश्य दर्शाए गए हैं, जो महिलाओं की सक्रिय सांस्कृतिक भागीदारी को प्रमाणित करते हैं। यहां की चित्रकला में महाकाव्यों जैसे महाभारत और रामायण का चित्रण किया गया है। श्रीनाथ जी की लीलाओं का चित्रण मेवाड़ चित्रकला में महत्वपूर्ण स्थान रहा है इसके अलावा राजदरबार के विभिन्न दृश्यों का भी चित्रण हुआ है। नाथद्वारा में पिछवाई कला बहुत प्रसिद्ध हैं इसमें श्रीनाथ जी के जीवन प्रसंगों को दर्शाया जाता है। लोक संगीत के क्षेत्र में भी मेवाड़ बहुत समृद्ध है। लोक संगीत ने अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं को जीवित रखा है। इनमें मांड, पिंगल, आणि और ढोला मारु जैसी कहानियां हैं जो आज भी लोक संगीत के माध्यम से जीवित है। लोक संगीत में अनेक लोक वाद्यों का इस्तेमाल किया गया है जैसे रावणहत्था, मोरचंग, इकतारा और भपंग आदि।

मेवाड़ का पारम्परिक नृत्य-नाट्य और संगीत – गवरी केवल नृत्य ही नहीं बल्कि संवाद और अभिनय से युक्त एक लोक-नाट्य शैली है, जिसे 'राई' भी कहा जाता है, जिसमें हास्य, व्यंग्य और धार्मिक संदेश का मिश्रण होता है। यह नृत्य-नाट्य, मुख्यत: भील समुदाय द्वारा सावन-भादों में प्रस्तुत किया जाने वाला, शिव-पार्वती की कथा, लोककथाओं, वीरगाथाओं और पौराणिक प्रसंगों पर आधारित होता है तथा इसमें अभिनय, संवाद और नृत्य का अद्भुत संगम दिखाई देता है। यह एक शुद्ध धार्मिक नृत्य है।

गैर मेवाड़ क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। यह होली के अवसर पर किया जाता है जिसमें केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। सभी व्यक्ति नृत्यकार वर्तुलाकार खड़े हो जाते हैं। पुरुष लकड़ी की छड़ियाँ लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। गैर नृत्य करने वाले पुरुष 'गैरिये' कहलाते है। गैर नृत्य में ढोल बांकिया और थाली वाद्ययन्त्रों का प्रयोग होता है। इनमें वादक वृत्त के मध्य में रहता है। । यह मुख्यत: भील जाति की संस्कृति को प्रदर्शित करता है। आजादी से पूर्व शासक अपने महलों में गैर नृत्य का आयोजन करवाते थे एवं नृत्य करने वालों को पुरस्कार देते थे।

तेरहताली नृत्य में मंजीरा, तानपुरा व चौतारा वाद्ययन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। नर्तकियाँ ध्वनि की लय को सुनने के पश्चात् बैठकर नृत्य करती हैं। इसमें तेरह मंजीरों की आवश्यकता होती है, जिसमें से नौ मंजीरे दायें पाँव पर, दो हाथों की कोहनी के ऊपर और एक-एक दोनों हाथों में होते हैं। हाथ वाले मंजीरे के टकराने से ध्वनि उत्पन्न होती है। यह मुख्य रूप से रामदेव जी के मेले में देखने को मिलता है। कामड़ जाति तेरहताली नृत्य के साथ रामदेवजी का यशोगान करती है।

घूमर नृत्य, नृत्यों का सिरमौर घूमर राज्य नृत्य के रूप में प्रसिद्ध है। स्त्री-पुरुष घेरा बनाकर नृत्य करते हैं, जिससे जातिगत विविधता प्रदर्शित होती है। लहंगे के घेरे को 'घूम्म' कहते हैं। इसमें ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस नृत्य में बार-बार घूमने के साथ हाथों का लचकदार संचालन प्रभावकारी होता है। इसका प्रचलन राजपूत समाज में अधिक है।

गरबा बाँसवाड़ा और डूंगरपुर क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें गीतों की लय भक्तिपूर्ण होती है। यह नवरात्रों में विशेष रूप से किया जाता है, इसमें समाज बिना भेदभाव के नृत्य का आनन्द लेता है। यह तीन स्वरूप में विभक्त होता है- प्रथम में शक्ति की आराधना एवं पूजा, दूसरे में कृष्ण-राधा के प्रणय चित्रण को नृत्य के रूप में प्रस्तुत करना, तीसरे में लोक जीवन का सौन्दर्य प्रस्तुत किया जाता है।

तुर्रा कलंगी ऐसा लोक नाट्य है, जिसमें दर्शकों के भाग लेने की अधिक सम्भावना होती है। मेवाड़ के शाह अली तथा तुकनगीर नामक संत पीरों ने तुर्रा कलंगी ख्याल की रचना की। इसमें 'तुरा' को 'शिव' तथा 'कलंगी' को पार्वती का प्रतीक माना जाता है। इस ख्याल को प्रस्तुत करने के लिए दो मंच आमने-सामने निर्मित होते हैं। जिन पर दो खिलाड़ी आपसी संवादों को मंच पर बोलते हैं। इसमें चंग नामक वाद्य का प्रयोग किया जाता है।

स्वांग लोक नाट्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसका शाब्दिक अर्थ है किसी विशेष ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में मान्य चरित्र तथा देवी-देवताओं की हूबहू वेश-भूषा धारण करते हुए उन के चरित्र की नकल करना। इसके कलाकार को बहरूपिया कहा जाता है। इसके प्रसिद्ध कलाकार जानकी लाल भांड हैं, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की है ।

संस्कार सम्बन्धी गीत – मेवाड़ की लोक संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यत संस्कारों के तेज से प्रदीप है जिनमें गर्भाधान-सस्कार, अन्न प्राशन, चुड़ाकर्म, उपनयन, विवाह संस्कार आदि प्रमुख हैं। वर निकासी के समय घुड़-चढ़ी की रस्म होती है। इस अवसर पर श्घोड़ीश गाई जाती है जो इस प्रकार है-

'घोड़ी म्हारी चन्द्रमुखी, इन्द्रलोक सुँ आई ओ राज।'

विवाह से पूर्व दूल्हा-दुल्हन की प्रेमाकांक्षा की व्यंजना बना-बनी के गीतों में मिलती हैं, जैसे-

'बनड़ो उमायों ए बनी ये थारै कारणै जोड़ी को उमायो ए बड़गौतन थारै रूप नैं।'

वधू के घर की स्त्रियों द्वारा वर की बारात का डेरा देखने जाने का प्रसंग राजस्थान के जला गीतों में मिलता है, जैसे-

'म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ म्हारी जोड़ी रा जला।'

परिवार में बालक के जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत जच्चा कहे जाते हैं। इनमें प्राय: गर्भिणी की प्रशंसा, वंशवृद्धि का उल्लास और शिशु के लिए मंगलकामना की जाती है। एक उदाहरण देखिये-

'होलर जाया ने हुई है बधाई थे म्हारा वंश बदायो रे अलबेली जच्चा।'

त्यौहार पर्व सम्बन्धी गीत- गणगौर का पर्व होलिका दहन के पश्चात् चौत्र मास में सोलह दिन तक कुंवारी कन्याओं व सधवा स्त्रियों द्वारा अनुष्ठानपूर्वक आयोजित किया जाता है। गणगौर का सबसे प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है-

'खेलण दो गणगौर भँवर म्हानें खेलण दो गणगौर म्हारी सखियाँ जोवे बाट हो भँवर म्हानें खेलण दो गणगौर।'

गणगौर व तीज के समय का घूमर नृत्य-गीत तो सम्पूर्ण भारत में राजस्थान की पहचान बन गया है। रंग-बिरंगे लहरियों से सुसज्जित स्त्रियों का 'घूमर नृत्य' अनोखा समाँ बाँध देता है, गीत इस प्रकार है-

'म्हारी घूमर छे नखराली ए मा गोरी घूमर रमवा म्हे जास्याँ।'

श्रावणी तीज पर भी गणगौर की भाँति ही तीज माता की सवारी निकाली जाती है और श्रावण मास की प्रकृति का सौन्दर्य-चित्रण करने वाले 'तीज' गीतों का गान किया जाता है, उदाहरणार्थ-

'आई आई सावणिया री तीज गौरी ओ रमवा नीस जी म्हारा राज।'

ऋतु सम्बन्धी गीत – राजस्थान में ऋतु-गीतों का प्रचलन भी बहुत है। शुष्क मरुधरा पर बसन्त और वर्षा ऋतु सर्वाधिक सुहावनी लगती हैं अत: इनमें हींदा (झूला या हिंडोल), सावण, वर्षा, तीज, गणगौर आदि गीतों द्वारा प्राकृतिक परिवेश का आनन्द लिया जाता है। सावण के अनेक गीत हैं जिनमें से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

'सावण आयो ए म्हारा सोजतिया सरदार, भँवर म्हानै पीवर मेलो ए।'

देवी-देवताओं के गीत – राजस्थान में धार्मिक आस्था भी अत्यधिक है इसलिए सगुण व निर्गुण लोक-भजन व कीर्तन पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। विनायक समस्त देवी-देवताओं में अग्रगण्य हैं, इसलिए कोई भी मांगलिक कार्य आरम्भ करते हुए प्रथम उन्हें स्थापित करके उनसे ऋद्धि-सिद्धि की याचना की जाती है। जैसे

'चालो हो गजानन जोशीड़ा रे चाला लगन्या लिखाइ बेगा आवाँ हो गजानन।'

लोक-देवियों में सती माता, सीतला माता, दियाड़ी की आदि माता पूजा अत्यन्त श्रद्धा से की जाती है और इनके भजन बहुत प्रचलित हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

'सती के दरबार में फूल रह्या म्हारी माय।
यो कुण तोड़े फूल या कुण हार गूँथे म्हारी माय।'

लोक देवताओं में तेजाजी, देव जी, पाबू जी, गोगा जी, जुझार जी आदि ऐसे ऐतिहासिक वीर पुरुष माने जाते हैं जिन्होंने परमार्थ के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। अत: उनका गुणानुवाद करते हुए अनेक भजन अतीव तन्मयता से गाये जाते हैं। रामदेव जी का यह गीत

'खम्मा खम्मा हो अजमाल जी रा कँवरा। थां ने तो ध्यावे आखो
मारवाड़ हो आखो। गुजरात हो, अजमाल जी रा कँवरा।'

मेवाड़ के मेले और पर्व- केसरियानाथजी का मेला उदयपुर जिले के धुलेव गाँव में जैन तीर्थकर ऋषभदेव का भव्य मन्दिर है, जहाँ चौत्र कृष्णा अष्टमी को विशाल मेला लगता है तथा प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रथमा और द्वितीया को भव्य रथयात्रा निकलती है। यहाँ प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभदेव के मन्दिर में श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ही नहीं, वैष्णव, शैव, भील एवं मुस्लिम सभी समुदाय की सहभागिता का प्रतीक है। ऋषभदेव की पूजा में केसर का विशेष प्रयोग होने के कारण इन्हें 'केसरियानाथ' कहा जाता है। ऋषभदेव की मूर्ति काले संगमरमर की होने के कारण भील उन्हें 'कालाजी' भी कहते हैं।

जौहर मेला मेवाड़ की वीरता और त्याग का प्रतीक है। यह आयोजन प्रतिवर्ष फाल्गुन मास में चित्तौड़गढ़ के ऐतिहासिक किले में संपन्न होता है। इस मेले का मुख्य उद्देश्य रानी पद्मिनी सहित उन समस्त वीरांगनाओं की स्मृति को सम्मानित करना है, जिन्होंने अपने सम्मान की रक्षा हेतु जौहर की परम्परागत प्रथा का निर्वहन किया। मेले में शौर्य यात्रा, लोकनृत्य, भजन, कवि सम्मेलन एवं ऐतिहासिक झांकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं, जो मेवाड़ के सांस्कृतिक गौरव का जीवंत प्रदर्शन करती हैं।

नाथद्वारा का अन्नकूट मेला राजसमन्द जिले में स्थित नाथद्वारा वैष्णवों के वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख धार्मिक स्थल है। यहाँ दीपावली के दूसरे दिन अन्नकूट का उत्सव मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड के देवताओं की भूख को संतुष्ट करने के लिए यह त्योहार मनाया जाता है। उबले हुए चावलों का एक ढेर मंदिर प्रांगण में लगा दिया जाता है। भील इसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करने के लिए नाचते गाते आते हैं। इन चावलों को बहुत पवित्र माना जाता है और ऐसी मान्यता है कि इनसे बहुत सी बीमारियाँ दूर होती हैं।

पर्वों की दृष्टि से मेवाड़ के त्योहार जैसे होली, दीपावली, गणगौर, तीज, मकर संक्रांति स्थानीय लोक परम्परा और रीति रिवाजों के अद्भुत संगम का उदाहरण हैं।

गणगौर चौत्र कृष्णा एकम से चौत्र शुक्ला तृतीया तक चलता है। कुवारियाँ श्रेष्ठ पति के लिए और सुहागिनें पति की दीर्घायु के लिए गणगौर का व्रत करती हैं। वे पूरे अठारह दिन तक गौरी पूजन करती हैं। गणगौर शब्द में 'गण' शिव का और 'गौर' गौरी या पार्वती का प्रतीक है। सोलह दिन तक कुमकुम और मेहंदी से दीवार पर एक-एक स्वास्तिक और सोलह-सोलह बिन्दियाँ लगाकर गणगौर की पूजा करती हैं। सोलह दिन बाद गणगौर के दिन सायंकाल ये महिलाएँ गीत गाती हुई 'ईसर और गौर' को किसी नदी या सरोवर में विसर्जित कर आती हैं। गणगौर चौत्र कृष्णा एकम से चौत्र शुक्ला तृतीया तक चलता है। मेवाड़ में यह त्योहार उदयपुर, नाथद्वारा तथा गोगुन्दा में विशेष रंगोल्लास के साथ मनाया जाता है

अक्षय तृतीया वैशाख मास की शक्ल पक्ष की तृतीया को यह त्योहार मनाया जाता है। कई जगह लोग खेतों में हल चलाकर अच्छी वर्षा एवं खेती की कामना करते हैं। घरों के द्वार पर अनाज को बालियों के चित्र बनाये जाते हैं तथा स्त्रियाँ मंगलाचार गाती हैं। अक्षय तृतीया को लोग 'अबूझ सावे' के रूप में मानते हैं। यह दिन शुभ माना जाता है। बिना मुहूर्त निकलवाए ही ग्रामीण अंचलों में इस दिन बड़ी मात्रा में बाल विवाह होते हैं।

तीज श्रृंगार की भावनाओं का त्योहार तीज राजस्थानी स्त्रियों का सर्वप्रिय त्योहार है। श्रावण-भाद्रपद महीने की मनोरम ऋतु में यह त्योहार मनाया जाता है। इस त्योहार पर स्त्रियाँ झूला झलती हैं, गीत गाती हैं व नृत्य करती है। राजस्थान में दो तीजों के पर्व मनाये जाते हैं। छोटी तीज और बड़ी तीज। छोटी तीज श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को और बडी तीज भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की तृतीया को मनाई जाती है। ऐसी मान्यता है कि तीज के दिन शिव और पार्वती का पुनर्मिलन हुआ था। इस दिन स्त्रियाँ रंगीन लहंगे और सतरंगी, पचरंगी ओढ़ने ओढ़े, हाथों पर मेहंदी लगाए, आभूषणों से सुसज्जित होकर यह त्योहार मनाती है।

मकर संक्रांति सूर्य के मकर राशि में प्रवेश और उत्तारायण की शुरुआत का पर्व है, जो कृषि, धार्मिक आस्था और सामाजिक एकता से जुड़ा है। इस दिन प्रात: स्नान कर तिल, गुड़, जल से सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है और तिल-गुड़, गजक, मूंगफली का सेवन किया जाता है। दान की परंपरा के तहत तिल, अनाज, वस्त्र बांटे जाते हैं। पतंगबाजी, मेले और लोकनृत्य माहौल को उत्सवमय बनाते हैं।

मेवाड़ में पारंपरिक हस्तशिल्प एवं चित्रकला - थेवा कला (प्रतापगढ़) काँच पर सोने का सूक्ष्म चित्रांकन है। काँच पर सोने की अत्यन्त बारीक, कमनीय एवं कलात्मक कारीगरी को 'थेवा' कहा जाता है। इसके लिए रंगीन बेल्जियम काँच का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम सोने की बारीक चद्दर पर सूक्ष्म चित्रांकन एक नई नक्काशी के साथ किया जाता है। थेवा कला में नारी श्रृंगार के आभूषण, गले का हार, मंगलसूत्र, टीका, अंगूठी, करधनी, पायजेब सभी को कलात्मक रूप दिया जाता है। विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ भी थेवा कला से अलंकृत की जाती हैं। थेवा कला विश्व में केवल प्रतापगढ़ के सोनी परिवार तक ही सीमित है। यह परिवार इस कला को काफी गोपनीय रखता है। यह कला लगभग 500 वर्ष पुरानी है, जिसे राजाओं ने प्रोत्साहन दिया।

दाबू प्रिन्ट (आकोला) चित्तौड़गढ़ जिले का आकोला गाँव दाबू प्रिन्ट के लिए प्रसिद्ध है। रंगाई-छपाई में जिस स्थान पर रंग नहीं चढ़ाना हो, उसे लई या लुगदी से दबा देते हैं। यही लुगदी या लई जैसा पदार्थ श्दाबूश कहलाता है, क्योंकि यह कपड़े के उस स्थान को दबा देता है जहाँ रंग नहीं चढ़ाना होता है। आकोला में रंगाई-छपाई के लिए अनुकूल परिस्थितियों हैं। आकोला के पास बहने वाली बेडच नदी, काली मिट्टी और वनस्पतियों के प्रभाव से कपड़े का रंग गहरा और आकर्षक होता है 'आकोला प्रिंट्स' के नाम से प्रसिद्ध ये वस्त्र विदेशों तक जाते हैं।

काष्ठ कला (कावड़ व खिलौने) राजस्थान में खाती या सुथार जाति के लोग लकड़ी का घरेलु सामान रखने, मांगलिक अवसरों पर काम में आने वाली वस्तुएँ व खिलौने बनाने का कार्य करते हैं। विवाह के अवसर पर काम आने वाला मोर, चौपड़ा, बाजोट, गणगौर, हिंडोला एवं लो के नाट्यों में काम

आने वाली विभिन्न वस्तुएँ जैसे–खांडा, तलवार मुखौटे, विमान एवं कावड़ (मंदिरनुमा आकार) बनाते हैं। कावड़ एक मन्दिरनुमा काष्ठ कलाकृति होती है, जिसमें कई द्वार बने होते हैं। सभी द्वारों पर चित्र अंकित रहते हैं। कावड़ में मुख्यत: महाभारत, रामायण व कृष्ण लीला के विभिन्न चरित्रों व घटनाओं का चित्रण होता है।

पट चित्र या फड़ (शाहपुरा) शाहपुरा के छीपा जाति के जोशी इस पट चित्रण (फड) में सिद्धहस्त हैं। 'फड' कपडे पर बने हुए चित्र होते हैं। जिन के माध्यम से किसी घटना या कथा का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। फड़ की लम्बाई अधिक और चौड़ाई कम होती है। फड़ अधिकतर लोक देवताओं, पाबूजी, देवनारायणजी, रामदेवजी व कृष्ण एवं माता दुर्गा के जीवन की घटनाओं व चमत्कारों पर आधारित विषयों का चित्रण होती है। फड़ का चारण भोपे जो कि राजपूत, गुर्जर, जाट, कुम्भकार व बलाई जाति के होते हैं, लकड़ी पर लपेट कर गाँव–गाँव जाकर पारम्परिक वस्त्र एवं वाद्य यंत्र के साथ थिरकते हुए वाचन करते हैं।

राजस्थानी चित्रशैली का क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है। उसकी समृद्धि के अनेक केंद्र है। राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि मेवाड़ है, जिसने अजंता चित्रण परम्परा को आगे बढ़ाया।

मेवाड़ शैली के प्रारम्भिक नमूनों में श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णी, सुपार्श्वनाथचरितम् हैं। महाराणा प्रताप के समय छप्पन की पहाड़ियों में स्थित राजधानी चावण्ड में भी चित्रकला का विकास हुआ। इस काल की प्रसिद्ध कृति ढोलामा: (1592 ई.) है, जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है। महाराणा अमरसिंह के समय में 1605 ई. में चित्रित 'रागमाला' प्रमुख ग्रंथ है। चित्रकला की दृष्टि से महाराणा जगतसिंह प्रथम का काल स्वर्णयुग कहलाता है। इस समय साहबदीन नामक कलाकार ने महाराणाओं के व्यक्ति चित्र बनाये। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक मेवाड़ शैली में बड़ा निखार आया। मेवाड़ शैली राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख शैली रही है और इसे मूल शैली माना जाता है। इन चित्रों में भारत की पन्द्रहवीं शताब्दी तक विकसित होने वाली पश्चिमी चित्रांकन शैली के अवशेषों के दर्शन होते हैं।

नाथद्वारा शैली में श्रीनाथजी आकर्षण के प्रमुख केन्द्र हैं। मेवाड़ के अन्तर्गत नाथद्वारा पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय का भारत प्रसिद्ध प्रमुख पीठ स्थल है जो श्रीनाथ जी की भक्ति का प्रमुख केन्द्र होने के कारण मेवाड़ की चित्र परम्परा में नया इतिहास जोड़ता है। श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे बड़े आकार के कपड़े पर जो पर्दे बनाये जाते हैं, उन्हें पिछवाई कहते हैं, जो नाथद्वारा शैली की मौलिक देन है। इस शैली की पृष्ठभूमि में सघन वनस्पति दर्शायी गयी है जहाँ पर केले के वृक्ष की प्रधानता है।

देवगढ़ शैली जब महाराणा जयसिंह के राज्यकाल में रावत द्वारिका दास चूण्डावत ने देवगढ़ ठिकाना 1680 ई. में स्थापित किया, तदुपरान्त, देवगढ़ शैली का जन्म हुआ। सर्वप्रथम इस शैली को प्रकाश में लाने का श्रेय 'श्रीधर अंधारे' को जाता है। इस शैली में शिकार, हाथियों की लड़ाई, राजदरबार का दृश्य, कृष्ण–लीला आदि के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस शैली के भित्ति चित्र 'अजारा की ओबरी', 'मोती महल' आदि में देखने को मिलते हैं।

संरक्षण की आवश्यकता और संभावनाएँ – शैक्षिक स्थलों जैसे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्थानीय संस्कृति, परम्परा, इतिहास और बोली को शैक्षिक पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना जाना चाहिए। बच्चों को बचपन से अपनी विरासत के बारे में परिचय कराया जाना चाहिए जिससे उनका संस्कृति से जुड़ाव होगा। आज के समय मे बहुत–सी मौखिक रूप से प्रचलित परंपराएँ लोकगीत, किस्से, रीति–रिवाज अब गौण होती जा रही है या होने की कगार पर हैं। इन परंपराओं को डिजिटल माध्यमों में संरक्षित किया जा सकता है जिससे भविष्य में जरूरी होने पर इससे शोधार्थियों को सामग्री मिलेगी और इसके साथ ही युवा पीढ़ी भी तकनीकी माध्यमों के द्वारा इनका उपयोग कर सकेगी। आर्थिक गतिविधियों को संस्कृतिक पहलू से जोड़ कर उसे जीवंत बनाए रखना सुनिश्चित किया जा सकता है। चित्तौड़गढ़ में शुरू हुई 'लोक कला मोबाइल एप्प' ने कई ग्रामीण कलाकारों को सीधे ग्राहकों से जोड़ा है। हस्तशिल्प, लोक–कलाएं, लोक–संगीत आदि को स्थानीय उद्यमिता से जोड़ने से शिल्पकारों को सम्मान, पहचान और आजीविका तीनों मिलती हैं। संस्कृति संरक्षण को सरकारी जिम्मेदारी नही मानकर सामुहिक उत्तरदायित्व के रूप में लेना चाहिए। सरकार, शैक्षिक संस्थाएँ, निजी क्षेत्र और स्वयंसेवी संगठन सभी को मिलकर प्रयास करना चाहिए जिससे कि संस्कृति अतीत न रह जाए अपितु वर्तमान में भी फले–फूले।

निष्कर्ष – मेवाड़ की संस्कृति सिर्फ भौगोलिक क्षेत्रीय विशेषता ना होकर भारतीय बहुलता, सह–अस्तित्व और लोक–जीवन के निरंतर विद्यमान उदाहरणों में से एक है। यहाँ की बोलियाँ, पहनावा, नृत्य, संगीत, शिल्प, त्यौहार और मानवीय व्यवहार सिर्फ मनोरंजन का एक आयाम ना होकर एक जीवनशैली हैं। आधुनिक तकनीक व जीवनशैली ने सांस्कृतिक विविधता के सोपानों को प्रभावित किया है जिससे यह भय वास्तविक प्रतीत होता है कि शीघ्र ही इनके संरक्षण के प्रयास की आवश्यकता है, नहीं तो मेवाड़ की संस्कृति को जानने के लिए भविष्य की पीढ़ी को पुस्तकों या अभिलेखों का ही सहारा लेना पड़ेगा। परंतु आज के उपलब्ध संसाधनों व तकनीक के आधुनिकीकरण से यह सत्य जान पड़ता है कि संरक्षण के अवसर आज पहले से अधिक हैं, सामुहिक प्रयासों के गठजोड़ के द्वारा यह संस्कृति न केवल बचेगी बल्कि पुन: अपनी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करके जीवंत हो उठेगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पुरबिया ममता, मेवाड़ की लोक संस्कृति, पृ.11, रैना बुक सेंटर, 2021
2. वही, पृ.14
3. ठक्कर, महेश, मेवाड़ का इतिहास और संस्कृति, विनायक पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2018, पृ. 56
4. त्रिवेदी, के.सी, नाथद्वारा की पिचवाई चित्रकला, भारतीय कला परिषद, नई दिल्ली, 2004, पृ. 15–18
5. चौधरी, बी.एल, रानी पद्मिनी: इतिहास और किंवदंती, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2008, पृ. 56
6. गुप्ता, मधु, मीरा बाई और भक्ति साहित्य, साहित्य भवन, आगरा, 2010, पृ. 41–45
7. पालीवाल, मदनमोहन, 'मेवाड़ चित्रकला में महाकाव्य चित्रण', भारतीय कला समीक्षा, खंड 20, अंक 3, 2015, पृ. 66–68
8. राणावत, डॉ. मनोहर सिंह, मेवाड़ का सामाजिक एवं साँस्कृतिक इतिहास, पृ. 98, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, 2006
9. वही, 96
10. ठक्कर, महेश, मेवाड़ का इतिहास और संस्कृति, विनायक पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2018, पृ. 94।
11. शर्मा, हरिनारायण, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान

साहित्य अकादमी, उदयपुर, 2012, पृ. 128।
12. पारीक, गिरिराज, राजस्थान: भूगोल और संस्कृति, विद्यार्थी प्रकाशन, अजमेर, 2015, पृ. 263।
13. पुरबिया ममता, मेवाड़ की लोक संस्कृति, पृ.23
14. जैन, सुरेश, राजस्थान के लोकगीत और लोकसंगीत, साहित्य मंडल, अजमेर, 2011, पृ. 97।
15. शर्मा, कृष्णचन्द्र, राजस्थान के लोकपर्व और मेलों की परंपरा, राजस्थानी साहित्य अकादमी, जोधपुर, 2008, पृ. 57
16. पुरबिया ममता, मेवाड़ की लोक संस्कृति, पृ.39
17. ओझा प्रियदर्शनी, पर्यटन और संस्कृतिक विरासत, पृ, 71
18. पुरबिया ममता, मेवाड़ की लोक संस्कृति, पृ.184
19. शर्मा, के. एल., भारतीय लोक पर्व और संस्कृति, जयपुर: लोकभारती प्रकाशन, 2019
20. गुप्ता मोहनलाल, उदयपुर संभाग का जिलेवार साँस्कृतिक एवं एतिहासिक अध्ययन, पृ. 289
21. वही, पृ 164
22. जोशी, लाल, फड़: एक जीवंत परंपरा, भीलवाड़ा: लोक कला प्रकाशन, 2020
23. भारतीय राष्ट्रीय संग्रहालय, 'मेवाड़ चित्रशैली के प्रारम्भिक ग्रंथ', नई दिल्ली, 2020
24. मिश्रा, वीरेन्द्र, रागमाला और राजस्थानी चित्रकला, वाराणसी: भारतीय कला प्रकाशन, 2015
25. जोशी, हरीश, नाथद्वारा की पिछवाई कला, उदयपुर: लोककला मंडल, 2019
26. सांस्कृतिक मंत्रालय, भारत सरकार: 'डिजिटल लोक-संस्कृति योजना', रिपोर्ट 2022

****